REVIEW OF RESEARCH

# 1854 से पूर्व बिहार की शैक्षणिक पृष्ठभूमिः एक अध्ययन

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

डॉ० पंकज कुमार
एम० ए०, बी० एड०, पी–एच० डी०

## भूमिका

शिक्षा से मनुष्य का जीवन समृद्धि और उन्नत होता है। इसकी वृद्धि और प्रज्ञा सुदृढ़ एवं प्रांजल होती है। कोई मनुष्य अन्य किसी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है जब उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा के द्वारा तीव्र और उच्च होती है। इसलिए विद्याहीन मनुष्य को पशुवत कहा गया है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था। जिसमें व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों का निष्पन्न करने के लिए शिक्षा की नितान्त आवश्यकता थी।

वस्तुतः आदिकाल से ही भारतीयों का सरल एवं पवित्र जीवन इस की अविरल धारा के साथ प्रवाहित होता रहा था। वैदिक काल में, उपनिषद काल में, बुद्ध युग में शिक्षा को महत्व प्रदान किया गया था। नालन्दा विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय, ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय ज्ञान के प्रकार के केन्द्र थे। लेकिन यवन आक्रमणकारियों ने हिन्दू समाज द्वारा चिर परिचित ऐश्वर्य एवं ज्ञान को अस्त–व्यस्त कर दिया। फिर भी ज्ञान प्रवाह शिक्षा पेमी राजा महाराजाओं के राजदरबार में प्रवाहित होता रहा एवं राज्य प्रदत्त संरक्षण ही शिक्षा संस्थाओं के जीवन के स्त्रोत बने रहे। राजाओं तथा अन्य रानियो के नाम से शिक्षा की उन्नति हुई।

इस दिशा में ब्राह्मण समाज रूपी दीपशिखा को सतत ज्योतिर्मय बनाए रखने के लिए असाध्य प्रयत्न करते रहे। कवि अमीर खुसरो भारतीय विद्वान शिक्षकों का अपनी 'नुदसिपेद्यर' नामक पुस्तक में इस प्रकार उल्लेख करता है– यहाँ के ब्राह्मण विद्वता में अरस्तू के समान होते हैं। तर्कशास्त्र, ज्योतिष, गणित तथा पदार्थ विज्ञान में हिन्दुस्तान के विद्वान बहुत आगे बढ़े हुए हैं। किन्तु अभी तक किसी ने उनसे पूर्णतया लाभ नहीं उठाया। अतः उनके विषय में जानकारी नहीं हो सकी है। मैंने उनलोगों से कुछ शिक्षा ग्रहण की है। अतः मैं उनलोगों का महत्व समझता हूँ।

प्राचीन काल से ही विद्वानों को शिक्षा जगत में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। रामायण काल में मिथिला के राजा जनक के दरबार में अनेक प्रकांड विद्वान रहते थे। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने लिखा है कि शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से पाटलिपुत्र श्रेश्ठ नगर था। चीनी यात्री फाहियान, हवेनसांग ने भी यहाँ बड़ी संख्या में शैक्षणिक संस्थाओं को देखा। नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय की अन्तराष्ट्रीय ख्याति थी।

## नालन्दा भारत का ज्ञान भंडार

नालन्दा भारत का ज्ञान भंडार तो था ही विश्व में ज्ञान विज्ञान का पथ प्रदर्शक भी था। आठवीं सदी तक इसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो चुका था। यहाँ मध्य एशिया, चीन तथा कोरिया आदि देशों के छात्र भी अध्ययानार्थ आया करते थे।

यहाँ प्रवेश परीक्षा अत्यन्त कठिन थी। दस परीक्षार्थियों में दो अथवा तीन का ही प्रवेश हो पाता था। फिर भी विश्वविद्यालय में छात्रों का अभाव नहीं था। लगभग दस हजार छात्र यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। इस विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा से ज्ञात होता है कि यह एक ऐसी संस्था थी जहाँ ज्ञान की सर्वोच्च

शिक्षा या स्नातकोत्तर शिक्षा प्रदान की जाती थी। यहां शंका समाधान होता था, वाद–विवाद तथा वक्तव्य का प्रशिक्षण दिया जाता था। यहाँ के विद्यार्थियों के लिए विश्वविद्यालय द्वारा भोजन, वस्त्र, आवास एवं औषधि का समुचित प्रबंध गाि। उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी के विद्यार्थियों के लिए अलग–अलग सुविधाओं की व्यवस्था थी। नालन्दा में प्रचलित विविध विषयों में पांच विषय आवश्यक थे। ये विषय शब्द विद्या या व्याकरण, शिल्प विद्या (कला और हस्त शिल्प), चिकित्सा विद्या हेतु विद्या (तर्क) और अध्यात्म विद्या (तत्वदर्शन) थे। चिकित्सा विद्या सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य थी। नालंदा आर्थिक तथा दार्शनिक केन्द्र के साथ साथ औद्योगिक तथा शिल्पकारी का भी प्रशिक्षण केन्द्र था।

नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षण विधि बहुत उत्तम थी। प्रत्येक विषय के प्रकांड विद्वान अध्यापक विद्यार्थियों के दिमाग में बलपूर्वक कोई बात नहीं भरते थे। बल्कि इनके मानसिक विकास की तरफ अधिक ध्यान देते थे। उनकी शिक्षण पद्धति उस ढंग की थी जिसमें मंद बुद्धि के विद्यार्थियों की ग्रहण शक्ति का भी विकास हो जाता था।

यह शिक्षाक्रम प्रायः 1200 ई0 तक प्रचलित रहा। थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य होता रहा, परंतु उसके मूल सिद्धांत में कोई परिवर्तन हुआ हो, यह मालूम नहीं होता। बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों के शिक्षा क्रम का प्रभाव सारे देश पर निश्चित रूप से पड़ता था।

## आठवीं शताब्दी में विक्रमशिला की स्थापना

पाल राजा धर्मपाल द्वारा आठवीं शताब्दी में विक्रमशिला की स्थापना भागलपुर से 24 मील दूर पत्थरघाट नामक स्थान में हुई थी। यह विश्वविद्यालय चार शताब्दियों तक अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान का केन्द्र रहा। धर्मपाल के उत्तराधिकारियों ने इस विश्वविद्याल का संरक्षण 13वीं सदी के पूर्व तक किया था। यहाँ के विद्वानों के कारण इसकी प्रसिद्धि शीघ्र ही हिमालय के उस पार तक पहुँच गई। लगभग चार शताब्दियों तक निरंतर इस विश्वविद्यालय के साथ तिब्बत का संबंध बना रहा। इसकी यह उच्चता और महत्व बहुत दिनों तक कायम रही।

बारहवीं शताब्दी में यहाँ तीन हजार विद्यार्थी थे। साथ ही एक अच्छी विद्वतमण्डली भी थी। यहां के प्राध्यापक साधारण जीवन व्यतीत करते थे। चार भिक्षुओं पर जितना खर्च होता था उतना ही एक प्राध्यापक पर किया जाता था। इस विश्वविद्यालय का शासन प्रबंध छह प्रमुख द्वार पंडितों की समिति के द्वारा किया जाता था। जिसका सभापति एक प्रधान भिक्षु होता था। इन द्वार पंडितों का काम प्रवेशार्थ आए विद्यार्थियों के ज्ञान का परिचय लेना था। राजा जनक काल में (955–983 ई) में निम्नलिखित व्यक्ति द्वार पंडित थेः–

पूर्वी द्वार पर –आचार्य रत्नाकर शांति
पश्चिमी द्वार पर– वग्गोसवरा कीर्ति
उत्तरी द्वार पर– नारोपा
दक्षिणी द्वार पर– प्रजनाकर मति
प्रथम मध्य द्वार– रत्नब्रज
द्वितीय मध्य द्वार– जननश्री मित्र।

इस विश्वविद्यालय के मुख्य विषय व्याकरण, तर्क, अध्यात्म, विज्ञान, तंत्र और धर्मशास्त्र थे। यह तंत्र विज्ञान का महान केन्द्र था। राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है– 18 वर्ष की अवस्था हो जाने पर दीपंकर मंत्र शास्त्र के विशेष अध्ययन के लिए अपने समय के बड़े तांत्रिक एवं चौरासी सिद्धों में एक सिद्ध विक्रमशिला के उत्तर द्वार के द्वार पंडित नारोपा के पास पहुँचे। तब से 21 वर्षो तक उन्हीं के पास पढ़ते रहे। दीपंकर के अतिरिक्त ज्ञान रक्षित, कनकश्री तथा मनकश्री (मणिक्य) नरोपा के प्रधान शिष्य थे।

विक्रमशिला के अंतिम गौरवकाल में अभयकार गुप्त की प्रधानता रही। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। तथा तंत्र की पुस्तकों का रूपांतर तिब्बती भाषा में किया था। यवनों के आक्रमण के समय अपने तंत्र–मंत्र बलिदान रूपी हथियार से विक्रमशिला विश्वविद्यालय के निवासियों ने आक्रमणकारी तुर्को के साथ अच्छा लोहा लिया था। तिब्बती लेखकों के अनुसार यहाँ के सिद्धों ने उन्हें अनेक बार मार भगाया था।

अन्ततः विक्रमशिला विश्वविद्यालय को बख्तियारपुर खिलजी ने नष्ट कर दिया और विद्वानों को मृत्यु के घाट उतार दिया।

## मिथिला का शिक्षा के केन्द्र के रूप में राष्ट्रीय ख्याति

बिहार प्रांत में स्थित मिथिला भी शिक्षा का महान केन्द्र था। राष्ट्रीय ख्याति सम्पन्न सह शिक्षण केन्द्र दार्शनिक विचारों की उन्नति के लिए प्रसिद्ध था। नव्य न्याय मिथिला की अनुपम देन है। इसका श्रेय नव्य न्याय के जन्मदाता गंगेश उपाध्याय (13 वीं शताब्दी) को है। गंगेश उपाध्याय द्वारा व रचित 'तत्व चिन्तामणि' से भारतीय तर्कशास्त्र के इतिहास में नवयुग का प्रारंभ होता है। उन्होंने दरभंगा शहर के दक्षिण पूर्व बारह मील की दूरी पर स्थित करियन ग्राम में एक विद्यालय की स्थापना की थी। गंगासेन (गंगेश उपाध्याय) ने न्याय दर्शन को एक नया मोड़ दिया। इन्होंने न्याय दर्शन के अन्तर्गत पदार्थ विमोचन की जगह प्रमाण विमोचन पर बल दिया।

'तत्व चिन्तामणि' अपने निर्माण काल से ही मिथिला के विद्वानों के लिए गहन अध्ययन का विष्य बनगई। 15वीं सदी के मध्य से ही सार्वभौम नामक विद्वान द्वारा बंगाल में 'तत्व चिन्तामणि' का अध्ययन प्रारंभ किया गया था। सार्वभौम की शिक्षा मिथिला के विद्यापीठ में पूर्ण हुई थी। सन 1503 ई0 में नवद्वीप विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात रघुनाथ शिरोमणि तथा अन्यान्य व्यक्तियों के प्रयास से बंगाल में 'तत्व चिन्तामणि तथा अन्यान्य व्यक्तियों के प्रयास से बंगाल में 'तत्व चिन्तामणि' का अत्यधिक प्रचार हुआ।

तेरहवीं और सोलवी सदी के मध्य मिथिला न्याय दर्शन के लिए चतुर्दिक प्रसिद्ध हो गयी थी। गंगेश उपाध्याय, बर्द्धमान तथा पक्षधर के अतिरिक्त मिथिला में नैयायिकों की एक लंबी पंक्ति दृष्टिगोचर होता है जिन्होंने न्यायशास्त्र पर अनेकानेक महत्वपूर्ण रचनाएं की।

विद्वता के साम्राज्य में मिथिला के विद्वानों ने प्रयः शताब्दियों तक राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सर्वोच्च प्रतिष्ठा कायम रखी। वहाँ के विद्यार्थियों की परीक्षा पद्धति अपने ढंग की अनोखी थी एवं 'शलाका परीक्षा' के नाम से प्रसिद्ध थी। इस परीक्षा के लिए हस्तलिखित पाठ्यग्रन्थ का आद्योपान्त ज्ञान होना अनिवार्य था। पाठयपुस्तक के किसी भी भाग के प्रश्नों की व्याख्या करनी पड़ती थी। इसके लिए हस्तलिखित पुस्तक के निरीक्षण के पश्चात उसके बीच सूई गिरायी जाती थी और सूई का शिरा ग्रन्थ के जिस पृष्ठ को स्पर्श करती, छात्र को उसकी सांगोपाग व्याख्या करनी पड़ती थी। इस प्रकार मिथिला विद्यापति से उतीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र दिया जाता था। इस प्रकार न्याय शास्त्र का केन्द्र मिथिला भारत में नालंदा की भांति विद्वता ग्रहण हेतु तथा न्याय में डचच एवं विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए छात्रों के आकर्षण की केन्द्र बिन्दु थी।

हिन्दुओं की भांति मुसलमानों ने भी विद्या एवं विद्वानों का आदर किया। विद्या एवं विद्वानों का संरक्षण एक पवित्र और धार्मिक कृत्य माना गया। तुर्क अफगान काल के शाही दरबारों में एक नहीं, अनेक ऐसे उदाहरण मिलते है। राजदरबारों में विद्वानों एवं धार्मिक पुरूषों को यथोचित सम्मान एवं संरक्षण प्राप्त हुए थे। विशाल साम्राज्य के वट–वृक्ष की शीतल छाया में अनेकानेक सरस्वती के भक्तों को प्रोत्साहन मिला।

इतिहासकार मिन्हाज उस सिराज लिखता है– मुहम्मद बख्तियार एक सेना लेकर बिहार से प्रस्थान करके नदिया नगर के द्वार पर एकाएक पहुंच गया। मुहम्मद–बख्तियार ने नदियों पर अधिकार जमा लिया और उस समय उस स्थान पर जो अब लखनौती के नाम से प्रसिद्ध हैं, अपनी राजधानी बनायी। फिर प्रत्येक स्थान पर अपने नाम का सिक्का और खुतवा लागू कर दिया। उसके तथा उसके अमीरों के प्रयास से उस प्रदेश में मुस्लिम मदरसे और खानकाहे बन गई।

शिक्षण संस्थाएं सूफी संतों के द्वारा परिचालित थी। सूफी महात्माओं ने अपने चिरपरिचित ज्ञान को जनमानस तक पहुंचाने के लिए विभिन्न नगरों में शिक्षा का विस्तार किया था। ऐसी संस्थाएं 'खानकाह' के नाम से विख्यात थी, जहाँ ज्ञान रस बहता था। जिसका रसास्वादन व्यस्क छात्र करते थे। खानकाहे अनुजीवी थी और स्वतंत्र भी।

## मदरसे उच्च शिक्षा के केन्द

मदरसे उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। मध्यकालीन भारतीय मदरसे आधुनिक महाविद्यालय के अनुरूप थे तथा वे प्रमुख नगरों या शहरों में स्थित थे। इन संस्थाओं में सुयोग्य विद्यार्थी कला एवं विज्ञान की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। व्याकरण के तत्व, पद्यकाव्य (कवियों द्वारा संकलित) अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति, किसी व्यक्ति का जीवन वृतांत, अहदिसुल अम्बिया (पैगम्बरों की जीवनियां) साधारणतया मदरसों के पाठय विषय थे और अन्य विषय उच्च शिक्षा के आधार निर्मित करते थे।

मकतब तथा निजी घर भी प्राथमिक शिक्षा के निश्चित केन्द्र थे। आरंभ में प्रारंभिक पाठशालाओं की संख्या न्यून थी। कालान्तर में उनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। मुहम्मद तुगलक काल में मकतबों में फकीह (धर्मशास्त्र के विद्वान) सहस्त्रों की संख्या में काम करते थे। शिक्षकों की जीविका वृति सरकारी खजाने से की जाती थी।

उस्तादों के अतिरिक्त अलिन, अदीब (साहित्यकार) तथा खत्तात (सुलेखवेत्ता) जीवनोपयोगी शिक्षा देते थे। शिक्षार्थियों को लिखना, पढ़ना, अनुशासन, गेंद क्रीड़ा, बाण, भाला प्रक्षेपण और चरित्र निर्माण की अनुपम शिक्षाएँ दी जाती थी। कुरान–शरीफ को कण्ठस्थ करना तथा उसके सस्वर पाठ को प्राथमिकता दी जाती थी। शब्द बोध तथा लेखन कला प्राथमिक शिक्षा के प्रथम सोपान थे।

विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा प्रेमी बादशाहों के द्वारा उन्हें भोजन, वस्त्र तथा पुस्तक प्राप्त करने की सुविधाएं भी थी। शिक्षकों ने विद्यादान का उन्मुक्त द्वार सर्वत्र खोल रखा था। प्रत्येक सामर्थ्यवान कम से कम एक विद्यार्थी का भरण पोषण करता था। अपने कर्मचारियों को सुल्तान फिरोज द्वारा प्रदत्त सदुपदेश का उल्लेख करते हुए सीरते फिरोज कहती है कि मुसलमान को ज्ञान तथा विद्या अर्जन करना चाहिए। अपने मुसलमान बंधुओं को शिक्षा से वंचित नहीं रखना चाहिए। अर्जित ज्ञान को निरंतर वाद–विवाद की कसौटी पर कसकर स्मृति पटल पर ताजा रखना चाहिए, ताकि उसका विस्मरण न हो। योग्य को ही शिक्षा प्रदान करना चाहिए।

## मुगलकाल में शिक्षा की व्यवस्था

मुगलकाल में शिक्षा की व्यवस्था कमोवेश पूर्ववत ही रही। मुसलमानों की शिक्षा के लिए राज्य मकतब, मस्जिदों और खानकाहो को न सिर्फ अनुदान ही देता था बल्कि उन्हें नियंत्रित और निर्देशित भी करता था। अकबर के राज्यकाल के अंतिम कुछ वर्षो को छोड़कर शेष संपूर्ण मुस्लिमकाल में राज्य का धर्म और न्यायमंत्रीसद्र ही शिक्षा का प्रधान होता था। यह सद्र की जिम्मेवारी थी कि वह उलेमाओं को संगठित करें, उनके क्रिया कलापों पर नजर रखे तथा ऐसी शिक्षा व्यवस्था को मूर्तरूप दे जो शरियत की व्याख्या के अनुरूप हो।

शिक्षा व्यवस्था के ऊपर से लेकर नीचे तक काबिल उलेमाओं का सशक्त वर्ग मात्र धर्मान्ध मुसलमानों के निर्माण पर बल देता था। मकतबों तथा मदरसों में पढ़ाई जानेवाली पुस्तकों के चुनाव में थोड़ी बहुत स्वतंत्रता दी गई थी। किन्तु सामान्यतः शिक्षण शालाओं के प्रबंधकों को सद्र के द्वारा निश्चित की गई नीति एवं प्रक्रिया का ही पालन करना पड़ता था।

मुगलकाल में बिहार सूबा में कई प्रसिद्ध मुस्लिम शिक्षण संस्थान थे जो पूरे सूबे में फैले हुए थे। इन संस्थानों ने कुछ प्रमुख विद्वानों को पैदा किया जो इस्लामी कानून एवं धर्मशास्त्र के विशेष प्रवक्ता बने। इन विद्वानों को मुगल सम्राटों ने दिल्ली दरबार में आमंत्रित कर सम्मानित किया। पटना एवं भागलपुर के मदरसों ने काफी नाम कमाया और दूर–दूर के विद्वानों एवं छात्रों को आकर्षि किया।

## मध्यकालीन बिहार में कई महत्वपूर्ण शैक्षिक एवं साहित्यिक केन्द्र

मध्यकालीन बिहार में कई महत्वपूर्ण शैक्षिक एवं साहित्यिक केन्द्र थे। उनमं सबसे पूराना बिहारशरीफ एवं मनेर में था। बिहारशरीफ के काजी दईमुल्लाह का मदरसा, बाढऋ के शम्सुल हक का मदरसा, राजगीर के मुल्ला मंसुर दानिश मन्द एवं मुल्ला अब्दूल शमी का मदरसा, एवं फुलवाड़ी शरीफ के अत्ताउल्लाह जैनवी का मदरसा विख्यात था। गया जिले के अमथुआ के मुल्ला शफी एवं मुलला अफाक के मदरसा ने बहुत ज्यादा नाम कमाया। यहीं पर दूर–दूर से छात्र शिक्षा ग्रहण करने आते थे। आमतौर, शेरघाटी एवं हाजीपुर में भी इसी तरह के मदरसे थे।

मध्यकाल में मिथिला ने हिन्दू शिक्षण संस्थानों में अपनी विशिष्ट छवि बना ली थी। मिथिला में शिक्षा तथा अध्ययन की प्राचीन परम्परा थी जिसका लाभ मध्यकालीन शिक्षा संस्कृति को भी मिला और प्रतिकूल परिस्थितियों में इस क्षेत्र ने हिन्दू शिक्षा पद्धति को पुनर्जीवित किया। इसी शिक्षा क्षेत्र की छाया में मिथिला के विद्वान जगदधर ने 'भगवतगीता', मेघदूत' तथा 'मालती माधव' पर टीकाएं लिखी। कवि विद्यापति ने अगणित मैथिली गीतों की रचना की, गंगेश उपाध्याय ने मिथिला में नव्य न्याय नामक नवीन मत की स्थापना करने के साथ–साथ 'तत्व चिन्तामणि' नामक युगान्तकारी पुस्तक लिखी। यहाँ के आचार्य महेश ठाकुर और उनके शिष्य

रघुनंदन दास की ख्याति तो दिल्ली दरबार तक फैली हुई थी, मिथिला विश्वविद्यालय की श्लाका परीक्षा अद्वितीय थी।

## बिहार में तांत्रिक शिक्षा

मधुबनी के निकट हरिनगर मध्यकालीन बिहार में तांत्रिाक शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। जहाँ तंत्र के अतिरिक्त संस्कृत भाषा एवं साहित्य, काव्य व्याकरण, ज्योतिष विज्ञान, छंद, निरूक्त, न्याय, दर्शन आदि की शिक्षा दी जाती थी। ब्राह्मण छात्र अन्य विषयों के साथ वेद, वेदांग, पुराण, कोश, भूकम्प, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण संबंधी ज्ञान तथा पशु पक्षियों की भाषा का अध्ययन करते थे। अध्ययन सत्र की समाप्ति के बाद छात्रों की परीक्षा विद्वत गोष्ठी में ली जाती थी। छात्रों की भूमिका के आधार पर यह निर्णय लिया जाता था कि किस छात्र को कौन सी उपाधि प्रदान की जाएगी।

भागलपुर जिले में महिषी और सिहुली शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। वहाँ चौदह प्राध्यापक प्रसिद्ध थे। इनमें राम–राम न्यायालंकार, नित्यानंद ओझा, राधाचरण विद्यावर्गीय की प्रसिद्धि बहुत अधिक थी। पूर्णिया और शाहाबाद जिले मं बड़ी संख्या में शिक्षकों को, पूर्णिया में 79 पंडितों को 'अध्यापक' की उपाधि मिली थी। धमदाहा के श्यामसुन्दर ठाकुर प्रसिद्ध विद्वान थे। ऐसा कहा जाता है कि वारेन हेस्टिंग्स ने जिन दस पंडितों को हिन्दू लॉ की व्याख्या के लिए रखा या उनमें वे भी थे इस जिले में शिक्षा के प्रमुख केन्द्र धमदाहा, पुरान्दाहा और सुखसेना थे।

तिरहुत में कई शिक्षक विद्वता में काफी प्रसिद्ध थे। उनके मेटाफिजीक्स के ज्ञान की काफी मांग थी। हालांकि महामहोपाध्याय गोकुलनाथ उपाध्याय के पश्चात मिथिला की प्रसिद्धि में कमी हुई थी। फिर भी भौर, मंगरौनी, पिलखवाड़, महेशपुर, अमरी, ननौर, रूद्रपुर और चकौती शिक्षा एवं ज्ञान के प्रमुख थे।

## मिथिला के विद्यार्थियों की परीक्षा विधि

मिथिला के विद्यार्थियों की परीक्षा विधि अपने ढंग की अनोखी थी जो श्लाका परीक्षा के नाम से मशहुर थी। इस परीक्षा के लिए हस्तलिखित पाठ्यक्रम का अद्योपान्त ज्ञान होना अनिवार्य था। पाठय पुस्तक के किसी भाग में प्रश्नों की व्याख्या करनी पड़ती थी।

मिथिला के विद्यार्थियों की परीक्षा विधि अपने ढंग की अनोखी थी जो श्लाका परीक्षा के नाम से मशहूर थी। इस परीक्षा के लिए हस्तलिखित पाठ्यक्रम का अद्योपान्त ज्ञान होना अनिवार्य था। पाठय पुस्तक के किसी भाग में प्रश्नों की व्याया करनी पड़ती थी।

इसके लिए हस्तलिखित पुस्तक के निरीक्षण के पश्चात उसके बीच सूई घूसा दी जाती थी और सूई की नोक ग्रंथ के जिस पृष्ठ का स्पर्श करती थी। छात्र को सांगोपांग उसकी व्याख्या करनी पड़ती थी। इस प्रकार मिथिला विद्यापीठ से उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र दिया जाता था।

## मैकाले ने शिक्षा में निश्यन्दन सिद्धांत का समर्थन

मैकाले ने शिक्षा में निश्यन्दन सिद्धांत का समर्थन किया। इस सिद्धांत के अनुसार सरकार को केवल उच्च शिक्षा की ही व्यवस्था रखनी चाहिए। मैकाले इस दृष्टि से पर्याप्त व्यवहारिक भी था, क्योंकि वह जानता था, कि सरकार की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वह संपूर्ण शासन में जनसाधारण के लिए विद्यालयों का जाल बिछा दे। मैकाले के विवरण पत्र ने भारत में पाश्चात्य साहित्य तथा विज्ञान की पृष्ठभूमि तैयार की। इसमें भारत के ऐसे विचारों का प्रसार हुआ जिनसे बाद में राजनैतिक जागृति तथा वैज्ञानिक चेतना का विकास हुआ। अंग्रेजी शिक्षा ने पाश्चात्य ज्ञान के द्वार भ्सदैव के लिए खोल दिया।

मैकाले के प्रस्ताव की कुछ आलोचना भी की गई है और प्रशंसा भी। उनके आलोचकों ने भारत में बाद में फैलने वाले असंतोष व राजनीतिक अशांति का कारण उनकी अंग्रेजी शिक्षा प्रचार की नीति को बताया है। उन पर भारतीय भाषाओं के अपमान व अवहेलना का दोषारोपण किया गया है। परंतु मैकाले भी भारतीय भाषाओं के महत्व को समझते थे। उन्होंने कहा था, ''देशी भाषाओं के प्रोत्साहन एवं विकास में हमारी अत्यधिक रूचि है। हम समझते है कि देशी भाषाओं में साहित्य का विकास हमारा अंतिम उद्देश्य है और हमारे सब प्रयास इस

दिशा में लग जाने चाहिए। परंतु उन्होंने भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना संभ नही समझा। अतः अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए उन्होंने प्राच्य साहित्य एवं धर्म की निंदा की।

ब्रिटिश शासन में भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त करने के विचार का समर्थ्न करने वालों में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेन्टिंक सबसे आगे थे। उनका मत था कि मैकाले का मत बिल्कुल समयोचित और सही है और बेन्टिक ने पत्र में व्यक्त भावनाओं के साथ अपनी पूर्ण सहमति प्रकट की।

मैकाले के विवरण पत्र में लार्ड बैटिंक ने प्राच्यवाद दल के नेता प्रिंसेप का मत मांगा। प्रिंसेप ने मेकाले के विचारों के वियद्ध अकाट्य तर्क रखे और प्राच्य साहित्य एवं शिक्षा के जीर्णोद्वार के प्रस्ताव रखे। परंतु बेटिंक ने मेकाले के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया।

7 मार्च 1835 ई0 को लार्ड विलियम बेटिंग ने मेकाले के प्रस्ताव को अनुमोदित करते हुए निम्नलिखित आदेश दिएः–

1. ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारत के मूल निवासियों के बीच यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान का संवर्धन करना होना चाहिए। अतः शिक्षा संबंधी समस्त धनराशि का व्यय अंग्रेजी शिक्षा के लिए होना चाहिए।
2. प्राच्य शिक्षालयों का उन्मूलन तथा बहिष्कार नहीं किया जाएगा। देशी शिक्षण संस्थाओं के समस्त वर्तमान शिक्षकों और विद्यार्थियों को उनका वेतन और छात्रवृतियां मिलती रहेगी। परंतु इसके बाद प्रवेश करने वाले विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियां नही दी जाएगी और इन विद्यालयों में नए–नए प्रोफेसरों की नियुक्ति सरकार के निर्णय से होगी।
3. लोक शिक्षा समिति ने प्राच्य कृतियों के मुद्रण तथा प्रकाशन में काफी धनराशि व्यय की है। भविष्य ने निधि के किसी भी भाग का प्रयोग इसके लिए नहीं किया जाएगा।
4. इन सुधारों के बाद समिति के पास जो राशि बचेगी उसे भविष्य में मूल निवासियों को अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा देने पर व्यय किया जाएगा।

## निष्कर्ष

समिति ने 1835 ई0 के प्रस्ताव को बड़े जोर शोर से लागू किया। समिति के दो प्रमुख प्राच्यवेता एच० टी० प्रिसेप और डब्लू मेकलाफटन ने अपने पराजय के कारण त्यागपत्र दे दिया। प्रिंसेप ने मेकाले के पत्र में कई बेसिरपैर की बातों और निराधार सिद्धांतों पर तीव्र प्रतिक्रिया दिखाई। मैकनाफटन ने बैटिंक के प्रस्ताव के विरूद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की क्योंकि इस प्रस्ताव में प्राच्य विद्या अध्ययन को प्रोत्साहन देने की नीति छोड़ दी गई थी।

## संदर्भ सूचीः–

1. जयशंकर झा– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 2004, पृ0 487
2. के0 एम0 मुंशी– द स्ट्रगल ऑफ द इम्पायर, भाग–5, पृष्ठ–510
3. रिजवी–खिलजी कालीन भारत, भाग–1, प्रथम संस्करण 1956, पृष्ठ 178
4. ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद–तवकांते अकबरी, भाग–3, पृष्ठ 654–55
5. रंजन सिन्हा– आस्पेक्टस ऑफ सोसाइटी एंड इकॉनोमी ऑफ बिहार, पटना, 1989, पृष्ठ 180
6. वी. उन. लुनिया– भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास, पृष्ठ 472
7. गौड़ीशंकर हीराचन्द्र ओझा–मध्यकालीन संस्कृति, पृश्ठ 115–116
8. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी भाग 30, 1944, पृष्ठ 157
9. डा० विमला प्रसाद–उत्तर भारतीय शिक्षा एवं ज्ञान के कुछ पक्ष, पृष्ठ 127
10. जी.एस. उच. ओझा– मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ 117–118